सॉफ़्टवेयर किसी की मिल्कियत नहीं होनी चाहिएः क्यों?

रिचर्ड स्टॉलमैन

डिजिटल सूचना प्रौद्योगिकी ने सूचना की नक़ल और उसमें रद्दोबदल को आसान बना कर ज़बर्दस्त योगदान दिया है।

- और कम्प्यूटर के ज़रिए यह हम सबके लिए और आसान हो जाएगा।

पर ऐसा लगता है कि कुछ लोग 'अगर आसानियां हों, ज़िंदगी दुश्वार हो जाए' में ज़्यादा यक़ीन रखते हैं। मालूम होता है कि कॉपीराइट की ईजाद करने वाले लोग भी इसी सोच के शैदाई रहे होंगे। कॉपीराइट का चलन सॉफ़्टवेयर प्रोग्रामों के कुछ 'मालिकान' पैदा कर देता है जिनमें से ज़्यादातर की मंशा यही रहती है कि बाक़ी जनता को उस सॉफ़्टवेयर के संभावित फ़ायदों से महरूम रखा जाए। उनकी कोशिश रहती है कि जिस सॉफ़्टवेयर का हम इस्तेमाल करते हैं उसकी नक़ल (कॉपी) बनाने और उसमें बदलाव करने का हक़ सिर्फ़ उन्हीं के पास रहे।

कॉपीराइट का चलन प्रिंटिंग प्रेस यानी छापाख़ाने के साथ अस्तित्व में आया था। छपाई ऐसी प्रक्रिया है जो बड़े पैमाने पर नक़ल या प्रतिलिपियाँ तैयार करने के काम आती है। इस तकनीक के मामले में कॉपीराइट की व्यवस्था के साथ कोई दिक़्क़त नहीं थी क्योंकि उसमें कॉपीराइट से केवल उन्हीं लोगों पर पाबंदियां लगती थीं जो बड़े पैमाने पर प्रतिलिपियाँ या नक़लें बनाते थे। इस व्यवस्था से किताबों के पाठकों की आज़ादी पर कोई आंच नहीं आती थी। एक ऐसा आम पाठक, जिसके पास प्रिंटिंग प्रेस नहीं था वह किताबों की नक़ल केवल क़लम और स्याही के ज़रिए ही कर सकता था, लिहाज़ा शायद ही किसी पर मुक़दमा चला हो।

पर, बामुक़ाबले प्रिंटिंग प्रेस, डिजिटल टेक्नॉलजी ज़्यादा लचीली है: जब सूचनाएं डिजिटल रूप में हों तो आप उन्हें आसानी से कॉपी करके दूसरों के साथ बांट सकते हैं। इसका यह लचीलापन ही इसे कॉपीराइट जैसी व्यवस्था के लिए बेतुका बना देता है। यही कारण है कि सॉफ़्टवेयर कॉपीराइट को लागू करने के लिए एक से एक ऊल-जुलूल और ज़ोर-ज़बरदस्ती वाले नियम-क़ानून बनते जा रहे हैं। मिसाल के तौर पर सॉफ़्टवेयर पब्लिशर्स एसोसिएशन (एस.पी.ए) के इन चार हथकंडों को देखिए:

- इस बात का भारी प्रचार कि दोस्त की मदद करने के लिए मालिक की अवज्ञा करना ग़लत है।
- अपने सहकर्मियों और साथियों के बारे में जानकारी देने वाले मुख़बिरों को लगाना।
- दफ़्तरों और स्कूलों में (पुलिस सहायता से) छापे, जिसमें लोगों को यह साबित करने के लिए बाध्य किया जाता है कि उन्होंने गैरक़ानूनी नक़लें नहीं बनाई हैं।

- एम.आई.टी में कार्यरत डेविड लामैकिया जैसे लोगों को अमेरिकी सरकार द्वारा, एस.पी.ए की मांग पर दंडित करना, जिन्होंने सॉफ़्टवेयर को कॉपी नहीं किया था (डेविड पर यह आरोप है भी नही) बल्कि कॉपी करने की सुविधाओं को खुला छोड़ दिया था और उनके प्रयोग पर नज़र नहीं रख पाए थे।

ये चारों ही तरीक़े भूतपूर्व सोवियत संघ से मिलते-जुलते हैं जहां कॉपी करने वाली प्रत्येक मशीन पर एक पहरेदार तैनात रहता था जो प्रतिबंधित चीज़ों की कॉपीईंग को रोकता था। नतीजतन लोग वहां सूचनाओं को चोरी-छिपे कॉपी (समिज़्दात) के रूप में एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुंचाते थे। पर यहां एक फ़र्क़ है:

सोवियत संघ में सूचनाओं पर नियंत्रण का मक़सद राजनैतिक था जबकि अमेरिका में इसका मक़सद मुनाफ़ा है। लेकिन हमें तो कार्रवाई प्रभावित करती हैं मंशा नहीं। सूचनाओं के आदान-प्रदान को रोकने की कोशिशों की वजह चाहे जो भी हो पर उसके लिए तरीक़े कमोबेश एक जैसे ही रहते हैं और उन्हें लागू भी वैसी ही सख़्ती से किया जाता है।

सूचनाओं के इस्तेमाल की लगाम अपने हाथ में रखने के लिए सॉफ़्टवेयर मालिक कई तरह के तर्क देते हैं:

गालियां

आम जनता भी सॉफ़्टवेयर के मालिकों की तरह सोचने लगे, इसके लिए वे 'पायरेसी' (*पायरेसी शब्द का अर्थ होता था – किसी लेखक की आज्ञा के बिना उसके लेखन को छापकर लाभ उठाना। इसके अलावा समुद्री डकैती के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग होता था* – सं.) और "चोरी" जैसे घटिया शब्दों के साथ-साथ 'बौद्धिक संपदा' और 'क्षति' जैसी विशिष्ट शब्दावली का सहारा लेते हैं। यहां कम्प्यूटर प्रोग्रामों और भौतिक वस्तुओं को बड़ी मासूमियत से एक ही तराज़ू में तौल दिया जाता है।

भौतिक चीज़ों के संदर्भ में संपत्ति-संबंधी हमारे विचार और आम समझ इस बात से तय होते हैं कि हम किसी दूसरे व्यक्ति की चीज़ों को उससे छीन लेना ठीक समझते हैं या नहीं। यह समझ किसी चीज़ को कॉपी करने पर सीधे-सीधे लागू नहीं हो सकती। पर सॉफ़्टवेयर मालिक हमसे उम्मीद करते हैं कि हम फिर भी इसे ऐसे ही लागू करें।

अतिरंजना

सॉफ़्टवेयर मालिक कहते हैं कि जब किसी प्रोग्राम को इस्तेमाल करने वाले खुद उन प्रोग्रामों को कॉपी करते हैं तो इससे मालिकों को 'हानि' या 'आर्थिक नुक़सान' होता है। पर हक़ीक़त में नक़ल से मालिकों पर कोई सीधा असर नहीं पड़ता और उससे किसी का नुक़सान भी नहीं होता। मालिक को नुक़सान तो तभी हो सकता है जब कॉपी करने वाला व्यक्ति कॉपी करने के एवज़ में उसकी क़ीमत अदा नहीं कर रहा है, जो अन्यथा उसे करनी पड़ती।

थोड़ा सा दिमाग़ लगाने से भी बात साफ़ हो जाती है कि अगर ऐसे लोगों को मुफ़्त कॉपी न मिले तो भी वे उसे ख़रीदेंगे नहीं। इसके बाद भी मालिक अपने नुक़सान का हिसाब लगाते हुए यह मानकर ही चलते हैं कि जो लोग उन्हें पैसा दिए बिना सॉफ़्टवेयर इस्तेमाल कर रहे हैं यदि वे मुफ़्त में सॉफ़्टवेयर हासिल न कर पाते तो वे ज़रूर उन्हीं से ख़रीद ही लेते। यह तो तिल का ताड़ बनाने वाली बात हुई।

क़ानून

मालिक अक्सर यह बताते हैं कि मौजूदा क़ानून क्या कहते हैं और उनके तहत हमें क्या-क्या सज़ाएं दी जा सकती हैं। इस पूरे सोच में यह मान कर चला जाता है कि आज के क़ानूनों का नैतिक आधार सवालों से परे है। हमसे यह उम्मीद की जाती है कि हम इन सज़ाओं को सहज और स्वाभाविक मान लें कि यह मानव-निर्मित नहीं है। इन दलीलों में सवाल या आलोचना के लिए जगह नहीं है, इनका मक़सद तो लकीर की फ़क़ीरी और परंपरा-पोषण भर है।

यह सर्वविदित है कि सही और ग़लत का फ़ैसला क़ानून नहीं करता। मसलन, कई अमेरिकी राज्यों में चालीस साल पहले अश्वेतों का बस के अगले हिस्से में बैठना ग़ैरक़ानूनी था। पर अब इस बात को केवल कोई नस्लवादी व्यक्ति ही सही ठहरा सकता है।

कुदरती हक़

प्रोग्राम लेखकों का दावा होता है कि उन्होंने जो प्रोग्राम लिखे या तैयार किए हैं उनके साथ उनका ख़ास रिश्ता है। वे कहते हैं कि चूंकि प्रोग्राम उन्होंने लिखा है इसलिए प्रोग्राम को लेकर उनकी इच्छाएं और हित किसी भी दूसरे व्यक्ति – बल्कि सारी दुनिया के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा अहमियत रखते हैं (वैसे सॉफ़्टवेयर का कॉपीराइट लगभग हमेशा ही व्यक्तियों के बजाय कम्पनियों के पास रहता है पर हमसे उम्मीद की जाती है कि इस छोटे-से फ़र्क़ को हम नज़रअंदाज़ कर दें)।

जो इस बात को नैतिक रूप से स्वयंसिद्ध मानते हैं कि प्रोग्राम लेखक आपके मुक़ाबले ज़्यादा अहम शख़्स होता है उन्हें – स्वयं एक जाना-माना सॉफ़्टवेयर लेखक होने के नाते – मैं सिर्फ़ इतना ही कहना चाहता हूं कि मेरी नज़र में ये कोरी बकवास है। पर आम लोग कुदरती हक़ के दावे से अक्सर हमदर्दी रखते ही हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सॉफ़्टवेयर को भी अक्सर बेवजह भौतिक वस्तुओं के समान मान लिया जाता है। अगर मैं एक कप चाय बनाता हूं और उस चाय को कोई दूसरा आदमी पी ले तो मैं उसकी हरकत पर एतराज़ ज़रूर करूंगा क्योंकि अब मैं उस चाय को नहीं पी पाऊंगा। उस आदमी की हरकत से मुझे ठीक उतना ही नुक़सान होता है जितना उसे फ़ायदा होता है। क्योंकि चाय को हममें से कोई एक ही पी सकता है, इसलिए सवाल उठता है कि दोनों में से कौन-सा व्यक्ति? हम दोनों में रत्ती भर फ़र्क़ करने से नैतिक संतुलन बिगड़ जाएगा। पर यदि आप मेरे लिखे किसी प्रोग्राम को चलाते या बदलते हैं तो इससे आप पर तो सीधा असर पड़ेगा परंतु मुझ पर केवल अप्रत्यक्ष प्रभाव ही पड़ेगा। अगर आप अपने किसी दोस्त को मेरे लिखे सॉफ़्टवेयर की कॉपी दे दें तो आप पर और आप के दोस्त पर इसका ज़्यादा असर पड़ेगा बामुक़ाबले मेरे। किसी भी सूरत में मेरा हक़ नहीं बनता है कि मैं आप को ऐसा करने से रोकूं। किसी को रोकना चाहिए भी नहीं। दूसरा कारण यह है कि लोगों को बताया जाता रहा है कि हमारे समाज में लेखकों के प्राकृतिक अधिकार को पूरा सम्मान दिया जाता है और उस पर सवाल नहीं खड़े किए जाते हैं।

लेकिन इतिहास के आइने में तो ठीक उल्टा अक्स दिखाई देता है। अमेरिकी संविधान बनाए जाने के वक़्त लेखकों के प्राकृतिक अधिकारों के प्रस्ताव को निर्णायक रूप से अस्वीकार कर दिया गया था। यही वजह है कि वहां के संविधान में कॉपीराइट को अनुमति तो है पर उसकी ज़रूरत पर कोई ज़ोर नहीं है। नतीजतन, संविधान के मुताबिक़ कॉपीराइट लाज़िमी तौर पर अस्थायी ही हो सकता है। साथ ही यह भी कहा गया है कि कॉपीराइट का मक़सद उन्नति को बढ़ावा देना है न कि लेखकों को फ़ायदा पहुंचाना। कॉपीराइट से लेखकों को कुछ फ़ायदा तो होता है, और प्रकाशकों को उससे भी ज़्यादा, पर इसका लक्ष्य असल में उनके व्यवहार को, तौर-तरीक़ों को बदलना था। हमारे समाज की असल स्थापित परंपरा यह रही है कि कॉपीराइट व्यवस्था जनता के प्राकृतिक अधिकारों पर चोट करती है – और इसे केवल जनता के हित में ही सही ठहराया जा सकता है।

अर्थ तर्क

सॉफ़्टवेयर पर मालिकाने के पक्ष में दिया जाने वाला अंतिम तर्क यह है कि इससे अधिकाधिक सॉफ़्टवेयरों के निर्माण में सहायता मिलती है। दूसरी दलीलों के मुक़ाबले इस दलील में कुछ ज़्यादा दम है। यह एक वाजिब मक़सद पर आधारित है और यह मक़सद है सॉफ़्टवेयर प्रयोग करने वालों को संतुष्ट करना। और यह बात तजुर्बे से साबित हो चुकी है कि यदि किसी चीज़ को बनाने वालों को बढ़िया मेहनताना दिया जाए तो वे उस चीज़ को बढ़िया और ज़्यादा तादाद में पैदा करने लगते हैं। पर इस आर्थिक तर्क में भी एक दोष है: यह तर्क इस मान्यता पर आधारित है कि सारा फ़र्क़ इस बात से पड़ता है कि हम पैसा कितना देते हैं। यह मानकर चलता है कि हम जो चाहते हैं वह है 'सॉफ़्टवेयर का निर्माण'- फिर भले ही उस सॉफ़्टवेयर का कोई मालिक हो या नहीं। आम लोग इस अवधारणा

को फ़ौरन मान लेते हैं क्योंकि यह भौतिक वस्तुओं के साथ हमारे अनुभवों से मेल खाती है। मिसाल के तौर पर एक सैंडविच को ही लीजिए। ये बाक़ायदा मुमकिन है कि आप एक वैसी ही सैंडविच को या तो मुफ़्त में लेंगे या उसे ख़रीदेंगे। यदि ऐसा है तो साफ़ है कि सारा फ़र्क़ इस बात का है कि आप कितनी क़ीमत चुकाते हैं। बहरहाल, सैंडविच को आप चाहे ख़रीदें या मुफ़्त में लें पर उसका स्वाद, उसकी पोषकता में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा और दोनों सूरतों में आप उसे खाएंगे भी केवल एक ही बार। आपको जो सैंडविच मिलती है, उसको आपने किसी सैंडविच वाले से ख़रीदा है या मुफ़्त में पाया है, इससे किसी चीज़ पर कोई सीधा फ़र्क़ नहीं पड़ता, सिवाय इसके कि बाद में आपके पास कितना पैसा बचता है। यह बात किसी भी भौतिक वस्तु पर लागू होती हैः किसी चीज़ का कोई मालिक है या नहीं इससे उस चीज़ पर कोई सीधा असर नहीं पड़ता। न ही इस बात से कोई फ़र्क़ पड़ता है कि उसे लेकर आप उसका क्या करेंगे।

मगर यदि किसी सॉफ़्टवेयर प्रोग्राम का कोई मालिक है, तो इससे उस सॉफ़्टवेयर पर और यदि आप उसकी एक कॉपी ख़रीद लेते हैं तो उसका क्या करेंगे - इस पर वाक़ई फ़र्क़ पड़ता है। यहां फ़र्क़ सिर्फ़ पैसे का नहीं है। सॉफ़्टवेयर पर मालिकाने की व्यवस्था से सॉफ़्टवेयर मालिकों को उत्पादन की प्रेरणा अवश्य मिलती है, लेकिन उत्पादित चीज़ समाज के लिए वाक़ई ज़रूरी हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। और इससे नैतिक स्तर पर ऐसा अमूर्त प्रदूषण फैलता है जो हम सबको अपनी गिरफ़्त में ले लेता है।

सवाल उठता है कि समाज की ज़रूरत क्या है? समाज को ज़रूरत है सूचनाओं की जो उसके सभी नागरिकों को सहजता से उपलब्ध हों। ऐसे प्रोग्रामों की, जिन्हें लोग न केवल इस्तेमाल कर सकें, बल्कि जिन्हें वे पढ़ सकें, सुधार सकें, अपने हिसाब से ढाल सकें, और बेहतर बना सकें। पर सॉफ़्टवेयर मालिकों से हमें हमेशा एक काला बक्सा जैसा मिलता है जिसे हम न तो पढ़ सकते हैं और न बदल सकते हैं।

समाज को आज़ादी भी चाहिए। जब किसी प्रोग्राम पर किसी दूसरे व्यक्ति की मिल्कियत होती है तो उस प्रोग्राम को इस्तेमाल करने वाला व्यक्ति अपने जीवन के एक हिस्से पर खुद अपना नियंत्रण खो देता है। और सबसे बढ़कर, समाज को अपने नागरिकों के बीच स्वैच्छिक सहयोग की भावना विकसित करने की ज़रूरत होती है। जब सॉफ़्टवेयर मालिक हमें बताते हैं कि अपने पड़ोसियों की स्वाभाविक मदद 'जालसाज़ी' है, तो दरअसल वे हमारे समाज में मौजूद सामाजिकता की भावना को ही तोड़ रहे होते हैं। हम इसीलिए कहते हैं कि मुक्त सॉफ़्टवेयर का मामला हमारी आज़ादी का मामला है, क़ीमत का नहीं।

मालिकों के पक्ष में दिया जाने वाला आर्थिक तर्क भले बेतुका हो, पर आर्थिक मुद्दा अपने आप में पूरी तरह वास्तविक है। कुछ लोग कई उपयोगी सॉफ़्टवेयर सिर्फ़ मज़े के लिए या तारीफ़ और प्यार पाने के लिए ही लिख डालते हैं। पर यह तय है कि ज़्यादा से ज़्यादा सॉफ़्टवेयर बनाने के लिए तो हमें धन उगाहना ही पड़ेगा। मुक्त सॉफ़्टवेयर बनाने वाले लोग पिछले दस साल से पैसा इकट्ठा करने के अलग-अलग तरीक़ों पर काम कर रहे हैं और इस कोशिश में उन्हें कुछ कामयाबी भी मिली है। इस सिलसिले में किसी को धन्नासेठ बनाने की कोई ज़रूरत नहीं है। अमेरिका की औसत पारिवारिक आय, जो तक़रीबन 35,000 डॉलर है, ऐसे बहुत से रोज़गारों के लिए काफ़ी ठोस आकर्षण है, जो प्रोग्रामिंग से कम संतोषजनक हैं।

फ़ेलोशिप मिलने के पहले कई साल तक मैंने अपनी आजीविका अपने बनाए मुक्त सॉफ़्टवेयरों में फ़रमाइशी सुधार करते हुए अर्जित की थी। इस काम में मैं अपने बनाए हुए सॉफ़्टवेयरों को इस्तेमाल करने वाले लोगों की सुविधा के हिसाब से संशोधित करता था। मुक्त सॉफ़्टवेयर में उनके अलग-अलग उपभोक्ताओं के लिए मैं जो सुधार करता था बाद में उसे सॉफ़्टवेयर के पुराने संस्करण में भी डाल देता था, जिससे नया संस्करण भी तमाम जनता को उपलब्ध होने लगता था। इस दौरान ग्राहक मुझे जो देते थे, वह उनके सॉफ़्टवेयर में किए जाने वाले उन संशोधनों के एवज़ में होता था जो वह करवाना चाहते थे, उन संशोधनों के लिए नहीं, जिन्हें मैं सबसे अहम मानता था।

फ़्री सॉफ़्टवेयर फ़ाऊंडेशन (एफएसएफ) मुक्त सॉफ़्टवेयर बनाने वाली एक कर-मुक्त संस्था है। यह संस्था जी.एन.यू-सीडी-रॉम, टी शर्ट, मैन्युअल, और डीलक्स वितरण (उपभोक्ता इन सबको कॉपी करने या उनमें बदलाव करने को स्वतंत्र हैं) करके और चंदों से पैसा इकट्ठा करती है। अब इस संस्था में पांच प्रोग्रामर हैं। इसके अलावा

तीन कर्मचारी डाक से आने वालें आदेशों को संभालते हैं। मुक्त सॉफ़्टवेयर बनाने वाले कुछ लोग सहायक सेवाएं बेचकर पैसा बनाते हैं। लगभग 50 कर्मचारियों (इस आलेख के लिखे जाने के समय) वाली सिग्नस सपोर्ट नामक एक कम्पनी का अनुमान है कि उसकी लगभग 15 प्रतिशत गतिविधियां मुक्त सॉफ़्टवेयर बनाने पर केंद्रित होती हैं। किसी भी सॉफ़्टवेयर कम्पनी के लिए यह प्रतिशत काफ़ी बड़ा है। इंटेल, मोटोरोला, टेक्सास इंस्ट्रूमेंट्स और एनालॉग डिवाइसेज़ सहित कई कम्पनियों ने लैंग्वेज सी के लिए मुक्त जीएनयू कम्पाइलर विकसित करने के लिए एक संयुक्त कोष स्थापित करने का फ़ैसला किया है। दूसरी तरफ एडा (Ada) लैंग्वेज के वास्ते जीएनयू कम्पाइलर के लिए अमेरिकी वायुसेना पैसा मुहैया कराती है क्योंकि उसका मानना है कि बढ़िया कम्पाइलर बनाने का सबसे किफ़ायती तरीक़ा यही है (वायुसेना से आने वाली फ़ंडिंग कुछ समय पहले समाप्त हो चुकी है। जीएनयू एडा कम्पाइलर अब प्रयोग में है और उसका रखरखाव व्यावसायिक ढंग से किया जाता है।)

ये सभी उदाहरण बहुत बड़े नहीं हैं, मुक्त सॉफ़्टवेयर आंदोलन ख़ुद अभी-भी छोटा और अपने शुरुआती दौर में है। मगर अमेरिका में श्रोताओं की सहायता से चलने वाले रेडियो प्रसारण के उदाहरण से साफ़ है कि किसी लंबी-चौड़ी गतिविधि को उपभोक्ताओं से पैसा वसूले बिना भी चलाया जा सकता है।

अगर आप कम्प्यूटर का इस्तेमाल करते हैं तो मुमकिन है कि मालिकाना सॉफ़्टवेयर भी इस्तेमाल करते हों। अब यदि आपका दोस्त आपसे उस सॉफ़्टवेयर की एक कॉपी मांगता है तो उसे मना करना अनुचित होगा। आख़िर सहयोग ज़रूरी है कि कॉपीराइट! मगर चोरी-छिपे, बंद दरवाज़ों में बैठ कर बांट-चूट करना भी किसी समाज के लिए स्वस्थ लक्षण नहीं है। आदमी को सिर ऊंचा करके, खुल कर, और आत्मगौरव के साथ जीना चाहिए और इसका ठेठ मतलब है — मालिकाना सॉफ़्टवेयरों को 'अस्वीकार' कर देना।

आपका हक़ बनता है कि आप सॉफ़्टवेयर इस्तेमाल करने वाले दूसरे लोगों की खुले दिल से मदद करें। ये आपका हक़ बनता है कि आप को पता रहे कि संबंधित सॉफ़्टवेयर कैसे काम करता है, और उसके सहारे अपने विद्यार्थियों को भी शिक्षित करें। और ये भी आपका हक़ बनता है कि जब उसमें कोई ख़राबी आ जाए तो आप उसे ठीक करने के लिए अपने पसंदीदा प्रोग्रामर को ही बुलाएं। मुक्त सॉफ़्टवेयर आपका हक़ है।

अनुवादः योगेन्द्र दत्त

Free Software Foundation